©Rajasthali Journal
E-ISSN 2583-1720
Received: May '22
Revised:
Accepted: June '22
© 2022 by the authors. This article is an open access article distributed under the terms and conditions of the Creative Commons Attribution (CC BY) license (https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/).

मधु कांकरिया का लेखन—नारी अस्मिता का जीवित दस्तावेज

उर्मिला वर्मा
अतिथि विद्वान, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह विश्वविद्यालय, रीवा मध्यप्रदेश

विकासशील मानव चेतन एवं आधुनिकता के इस दौर में देशकाल का भविष्य भारतीय समाज का युवा वर्ग ही है। साहित्य जगत में सुधी विद्वानों द्वारा विद्या अध्ययन एवं अनुभव उचित मार्गदर्शन लेकर युवा पीढ़ी समाज में नवीनता का विकास करेगी। पाश्चात्य की नकल का प्रभाव एवं किशोर मानस में कामोत्तेजना की भावना वर्तमान युग में नकारात्मकता को जन्म देती है। मधु कांकरिया का कथा सहित्य युवा पीढ़ी को लेकर अत्यन्त सोचनीय तथा विचारणीय कदम उठाकर समाज को जीवन दृष्टि प्रदान कर रहा है।

अभी हाल में ही आया उनका उपन्यास 'हम यहां थे' एवं 'पत्ताखोर' 'सेज पर संस्कृत' लगभग ये सभी युवा पीढ़ी की बदलती मानसिकता पर आधारित है। जहां एक ओर ऐसे युवा कॉम की कहानी है। जो समाज को संघर्ष, संकल्प, समर्पण की दिशा बताते हैं। और एक ओर युवा पीढ़ी में नशा किस तरह से अपनी जड़ जमा के बैठा है इसका चित्रण है। और एक ओर वैश्वावृत्ति में फंसे हुए युवक एवं युवतियों का वर्णन 'सलाम आख़िरी' उपन्यास में प्रदर्शित हुआ है।

आज कल के परिवेश में आतंकवादियों और नक्सलवादियों का प्रभाव युवा पीढ़ी को निरंतर गर्त की ओर लेकर जा रहा है। 'सूखते चिनार' एक ऐसा उपन्यास है। जिसमें संदीप, जो कथानायक है देश सेवा के लिए अपने सम्पूर्ण परिवार एवं समाज से विद्रोह के लिए तत्पर होता है किन्तु देश सेवा का मोह त्यागने के लिए कतयी तैयार नहीं। ''ऊँची⋯थर्ड डिग्री टॉर्चर⋯संवेन्थ डिग्री टॉर्चर, डंडा—बेरी, सिकली, चरखी, हैदराबादी गोली ये कुछ यातनाओं का नाम थे जो उन दिनों नकसलवादियों के दिमाग ठिकाने लगाने के लिए ईजाद की गई थीं। तूफानी वे ग से बढ़ता वह आंदोलन क्या यूँ ही कुचल डाला गया था। हर इंसपेक्टर, इंवेस्टिंग ऑफिसर, डिप्टी कमिश्नर, कमिश्नर के पीछे बड़ी कुर्सी की शह थी। नहीं तो क्या संभव था इस प्रकार कानून को धता बता देना। सभ्यता और संस्कृति के साथ जिनका संबन्ध कम आता है और जो विकसित समाज से दूर रहते हैं उन्हें पिछड़ा वर्ग कहते हैं। भारत में अनेक पिछड़ी जातियाँ हैं, इनमें प्रमुखतः दो प्रकार हैं— एक सभ्य समाज में रहनेवाली तथा दूसरी जंगलों अथवा दुर्गम पहाड़ी क्षेत्र में रहनेवाली। सभ्य समाज में रहने वाली के साथ समाज छुआछूत का तथा अपमान जनक व्यवहार करता आया है। आज कानून के कारण तथा पाश्चात्य सभ्यता तथा शिक्षा के प्रसार के कारण इसमें थोड़ा परिवर्तन आया है। इतना तो स्वाभाविक रूप से संभव है कि युवा वर्ग यदि चाहे तो पूर्व परंपरा को संघर्ष एवं विचारों से किसी एक अथवा अनेक सामाजिक समावेश के द्वारा व्यवहार एवं समायापेक्षी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु व्यक्ति का व्यवहार मानसिकता को परिवर्तित करने में पर्याप्त योग दे सकता है। ''हवा में एक अजीब सी चेतावनी और आने वाली आंधी की धमक भी थी जिन्हें दीपशिखा धीरे—धीरे सुनने, समझने और भिड़ने की चेष्टा कर रही थी। इन सत्यों में सबसे सुलगता सत्य था जमीन जो आदिवासियों के लिए धरती मां भी तो भूमाफिया और कॉरपोरेट्स के लिए सोने की मुर्गी। इसी जमीन ने आदिवासियों को खून के आंसू रुलाए, उनकी महिलाओं का बलात्कार, करवाया, उनके घरों को तबाह किय और उन्हें पलायन करने को मजबूर कर इन्हें मजदूर बना ईंट, गारा पत्थर ढोने को मजबूर किया। यह सब सुनियोजित ढंग से चल रहा था।''

इस प्रकार यह उपन्यास दलित एवं आदिवासियों के प्रति युवा वर्ग की मानसिकता तथा उनके भीतर पनपती सामाजिक दायित्व की भावना का सटीक उदाहरण है। कार्यप्रवृत्तियों की वैयक्तिक स्वतंत्रता युवा पीढ़ी को प्रगति दायनी रूप देकर अवरोध प्रस्तुत करती निश्चित रूप से उच्छृंखलता का प्रारूप होगी। वास्तव में सामाजिक संस्थाओं का सहयोग प्रगति की समग्रता के साथ—साथ युवा वर्ग के संघर्ष की स्थिति उपस्थिति समाज में नवीन बदलाव लाने का हौंसला रखती है। युवाओं के संघर्ष के कारण भारतीय समाज में संक्रान्ति परिवर्तन परिलक्षित हुआ है। व्यक्तिगत स्वार्थ पूर्ति के निमित्त विविध वर्ग संघर्षरत हैं, जिससे प्रगति की समग्रता का स्वाभाविक प्रतिफल हुआ है।

''एक वर्ग का दूसरे वर्ग के खिलाफ लड़ने के मैदान में उतरना, और यहाँ संघर्ष ही उस परिवर्तन का मुख्य साधन है जिससे समाज में परिवर्तन लाय जा सकता है। संघर्ष दुनियाँ में ही नहीं, तो वह बहुत बुरा है, ऐसा आँख मूँद लेने से काम नहीं चलेगा। जब तक अलग—अलग विरोधी स्थाई स्वार्थ वाले वर्ग मौजूद हैं, तब तक उत्पीड़तों को संघर्ष से अलग रहने की सलाह देना मेमने को भेड़िये के मुँह में फेंकना है।''

मधु कांकारिया कृत उपन्यास 'सेज पर संस्कृत', 'सलाम आख़िरी', 'सूखते चिनार', 'खुले गगन के लाल सितारे',

'हम यहां थे' ये सभी रचनाएं स्त्री की पुरुष वर्चस्व के सामने पराजित मनोवृत्ति वाली कुंठित मानसिकता भरे जीवन का वर्णन सशक्त रूप से करने में सफल हुए हैं। साठवें दशक से स्त्री–विमर्श का जोर–शोर अधिक मात्रा में साहित्य के क्षेत्र में सशक्त रूप से चालू रहा जो आज भी चल रहा है।

भारतीय समाज में नारी को न केवल एक आदर्श स्थान ही दिया गया है बल्कि उसे पूजनीय भी कहा गया है। भारतीय संस्कृति तो यहाँ तक कहती है कि–''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते तत्र देवताः।'' जिस देश में नारी के प्रति इस प्रकार के आदर्श और संस्कार हों उस देश की महिलाओं का अस्तित्व इतना खोखला और आधार विहीन भी हो सकता है यह सिर्फ देश के लिए नहीं अपितु सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था के लिए अपमान और शर्म की बात है। ''माफ कीजिएगा मेरी मातृत्व की परिधि सिर्फ मेरे बच्चे तक ही सीमित नहीं है। खैर, आप इसे नहीं समझेंगे कि मैं यहां क्यों हूं? यहां मेरी जरूरत सबसे अधिक है.. नारी के बिना संसार की कल्पना ही छोड़ दीजिए,

दरअसल मेरा यह मानना है कि जब साल दर साल अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवास 8 मार्च को मनाया जाता है। बड़े–बड़े वायदे और योजनाएँ बनाई जाती हैं किन्तु बाद में सब वहीं स्थित रह जाती हैं। स्त्री के प्रति होने वाले अपराध की प्रथम इकाई हम कन्या भ्रूण हत्या से ले सकते हैं। वैसे तो इसे ग्रंथों में पाप व कानून में दण्डनीय अपराध कहा गया है किन्तु विश्व बैंक की एक रिपोर्ट में लैंगिक समानता और विकास के अनुसार दुनिया में जन्म लेने से पूर्व लड़कियों को मार देने की घटनाओं में चीन के बाद भारत विश्व में दूसरे स्थान पर है। प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह जी ने कन्या भ्रूण हत्या को 'राष्ट्रीय शर्म' बताया है।

लेखिका का यह मानना है कि यदि नारी की स्मृति और संवेदना को संवारा गया होता तो वे आज पश्चिमी देशों की स्त्रियों को अपना आदर्श बना कर उन्मुख सैक्स जीवन को अपनाने की जिद नहीं करतीं। वे अपने अन्दर एक ऐसी नारी शक्ति के विकास के लिए प्रयास करतीं जो अपने चारों ओर उगे नर्कों को जड़ से उखाड़कर फेंक सके तथा उनकी नाक के नीचे करोड़ों की संख्या में जो स्त्रियां नारकीय जीवन जीने के लिए विवश की जा रही हैं, उनके उद्धार के लिए वे कुछ कर सकें।

उनके अंदर मदर टैरेसा की तरह दीन–दुखियों की मदद करने का जुननू जागा होता उनके अन्दर बेबसी में स्कूलों से बाहर रह जाती गरीब बालिकाओं को स्कूलों तक पहुँचाने तथा उनकी पढ़ाई के लिए प्रयास करने का जुनून जागा होता। ''मैं आदमी हूँ यानि पुरुष, मर्द, स्वामी, देवता, मंत्री, संतरी, सामंत, राजा, मठाधीश एवं न्यायाधीश सब कुछ हूँ मेरे लिए ही सब कुछ है या सब कुछ मैंने अपनी सुख–सुविधा, भोग–विलाश और ऐयाशी के लिए बनाया है। धर्म, अर्थ, समाज, न्याय और राजनीति के सारे कायदे कानून मैंने बनाए है। मैं ही समय–समय पर उन्हें परिभाषित और परिवर्तित करता हूँ, सभी धर्मों का भगवान मैं ही हूँ, ''अर्धनारीश्वर'' का अर्थ आधी नारी और आधा पुरुष नहीं बल्कि आधी नारी और आधा ईश्वर है। इसलिए तुम नारी और मैं (पुरुष) ईश्वर हूँ। तुम्हारा ईश्वर पति परमेश्वर हूँ।''[25]

लेखिका के अनुसार समाज का वातावरण, परिवेश बाजार का रूपविहीन जीवन अपने रचम रूप में बेशर्मी से खुला यौन व्यापार अंधेरे में उम्मीद के संधिस्थल, अपने स्वाभिमान के विरूद्ध अपने खिलाफ किसी दूसरे देह इंतजार करती उबकाई और उदासी। लिपीलपुती देह आँखों में भविष्यहीनता चेहरे पर रास्ता भड़कीला मेकप, रँगे होठ, सस्ती चमक प्लास्टिक की चप्पलें, अठारह से लेकर चालीस बयालीस तक की उम्र की सभी वीरांगनाएँ। एक नजर में हुस्न के जलवे, न अदाओं का जादू, न कला, न श्रृंगार, न साज, न आवाज।

सिर्फ देह, माद देह। ईश्वर की मानव को अमूल्य भेंट प्रेम और नारी की सबसे मूल्यवान सम्पत्ति शील के खरी फरोख्त ये रास्ते और इन रास्तों पर देह व्यापार करती स्त्रियों के साथ पुरुष दलाल की कमी नहीं है, जो स्त्री के माध्यम से पैसा कमाना चाहते हैं। नारी नरक की अथाह वेदनाओ का प्रस्तुति करण भोगे हुए यथार्थ के समान लेखिका ने उपन्यास के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

''पहली पत्नी को कोई मलाल नहीं कि उनके होते हुए भी आप एक सौतिन ले आए?'' गर्व से फूलते हुए जवाब दिया कार्तिक दा ने–''मलाल कहीं के होए हम दोनों के बराबर मानित है और दोनों के बराबर को हक देईत है। ''धूल उड़ाती जीव हवा से टक्कर ले रही थी। जाने कब की भूली–बिसरी लोकगीत की एक पंक्ति मेरे कानों में अपनी व्यथा सुना रही थी–मैं चंदा जैसी नार राजा क्यों लाए सौतनिया।'' लेखिका ने अपने लेखन में विशेषकर स्त्री शोषण की तमाम परिस्थितियों का वर्णन किया है। नारी के साथ पुरुष की बेवफाई के बहुत नमूने हैं। उसका सबसे बड़ा कारण पुरुष की वह मानसिकता है कि नारी देह एक वस्तु है और उसे सपाना पुरुष का अधिकार है। करोड़ो स्त्रियाँ ऐसे संतो के माध्यम हर दिन पलायनवादी बनाई जा रही हैं और समाज खड़ा–खड़ा देख रहा है, सरकारें मात्र मूकदर्शक हैं। जब स्त्री ऐसे महिमामंडित संत को देखती है तब वह उसे उसमें साक्षात् भगवान नजर आता है। स्त्री का स्वभाव ही है, वह दिव्यता के आगे झुक जाती है; असली व नकली दिव्यता के बीच भेद करने का कष्ट वह नहीं उठाती। सीधी चाल से चलकर दिव्यप्रभा ने जब उनकी वन्दना की तो एक आदिम आवेग और अपरिभषित मादक अनुभूति के आवेग में थर–थर काँप उठे वे और बन्दना कर साध्वी जब पंडाल की ओर बढ़ने लगी तो उन्हें लगा वे मर रहे हैं। तब तक कोई कल्पना...कोई...स्वप्न कोई उम्मीद उनके चित्त को पूरी तरह विस्थापित कर चुकी थी और क्षण की उस मादक लपट में वे भूल बैठे अपने संन्यासी चोले को कृआत्मा

जैसे चोले से फटकर मुँह पर आ विराजी और सोचने के पूर्व ही आर्त्त कंठ से पुकार उठे वे–दिव्यप्रभा जी !''

'सलाम आखिरी' उपन्यास में वेश्याओं के जीवन का जीता जागता अनुभव मधुजी ने उस गन्दगी के बीच जाकर प्रत्यक्ष देखा है। उपन्यास में वेश्याओं के असहज और प्रत्यक्षदृष्टा की तरह उठाये गए विषय की रचना के दौरान आयी हुई चुनौती को स्वीकार किया है। इस उपन्यास में वेश्यावृत्ति पर विचार करती हुई इसके इतिहास की ओर हमें ले चलती है। महाभरत काल, मौर्यकाल और वैदिककाल में भी वेश्यावृत्ति यहाँ पर था और बौद्ध धर्म में गणिकाओं का उल्लेख मिलता है। हर युग में वेश्याएँ थी। प्रस्तुत उपन्यास इसी के आधार पर बुनी एक मर्मस्पर्शी कहानी है, जो उस दौर के जीवनानुभावों को और घटनाओं–परिघटनाओं के बीच से गुजरते हुए, लेखिका को निकट से छुते हुए आकार लेती है। उपन्यास की शैली और भाषा का प्रवाह पाठकों को अपने साथ बहा ले जाने की क्षमता के लिए अद्वितीय है। नक्सलबादी से उठी एक चिंगारी शोषण विहीन समतावादी समाज और मानवीय गरिमा से जीवन जीने योग्य वातावरण की रचना की आग को अपने अंतरतम में छिपाए उठी थी। ''हाँ–हाँ इतिहासकारों के अनेसार वैदिक काल में गणिकावृत्ति अस्तित्व में थी। वेदों में प्रयुक्त पुनश्चली, महानग्नी और राम्भा जैसे शब्द निम्नकोटि की गणिकावृत्ति के ही सूचक हैं। जैन और बौद्ध धर्म की जातक कथाएँ गणिकाओं के उल्लेख से भरी पड़ी है। भारत में दरअसल धर्म एवं राज्य के माध्यम गणिकावृत्ति को स्वीकृति इसी युग में मिली राज्य की देखरेख में ही वे पनपीं। उस युग की सुसंस्कृत एवं कला की आराधक गणिकाएँ यूनान की गणिकाओं की जोड़ी की थी। दरअसल भवना प्रधान हमारे देश में काम जीवन सदैव ही अमर्यादित रहा। विश्रृंखलित रहा। इसलिए यहाँ वेश्याएँ हर युग में रहीं, बस नाम बदलते रहे। कभी उन्हें देवदासी, सर्वभोग्या, रूपजीवा–तो कहीं उन्हें नृत्यांगना, गणिका, नगरवधू तो कभी तबायफ, वारांगना वेश्या–कालगर्ल, कसबिन एवं पतुरिया कहा जाता रहा। फर्क क्या पड़ा है।''

रूचियों का इतिहास गवाह है कि व्यक्ति की चेतना हर स्थिति में अपनी यात्रा तय कर लेती है। रुचियों में इतनी शक्ति निहित होती है कि वे अपने मनोनुकूल आलंबन चुन लेती है। मैं यह तो नहीं कह सकती कि रूचियाँ साहित्य के क्षेत्र में भी गतिशील होती होंगी और प्रत्येक व्यक्ति रूचियों के ताने –बाने से अपने जीवन का इतिहास बुन लेता होगा। ''मानव मुक्ति का स्वप्न देखनेवाला बुद्ध की ही समकालीन थी आम्रपाली और उन्हीं के समकालीन तीर्थकर महावीर के समय की ही थी वेश्या कोशी के महावीर के साथ संवाद के प्रमाण मिलते हैं। पर इतिहास का निर्माण करती इन वारांगनाओं के उद्धार के लिए उस समय के प्रखर चिन्तक, मानव मुक्ति के स्वप्नद्रष्टा एवं करूणा की मूर्ति बुद्ध और महावीर ने कुछ नहीं किया।''

अध्यात्म की आड़ में ये तथाकथित सन्त स्त्रियों को पलायनवादी बना देते है। कोई सन्त स्त्री को यह नही बताता कि उसके चारों ओर जितना नर्क उगा है। वह तब तक दूर नहीं हो सकता जब तक स्त्री शक्ति उसके विरूद्ध तन कर खड़ी न हो जाए।

स्त्री विमर्श पर आधारित इस उपन्यास में नारी अस्मिता की खोज मिलती है। साध्वियों के जीवन की स्थिति दर्शाते हुए इस उपन्यास में नारी शोषण तथा विषमता को जितना विस्तार गया है। उतना ही अन्याय और शोषण के खिलाफ जूझती नारी का चित्रण भी किया है। इस उपन्यास में एक ऐसे परिवार का चित्रण है जिस परिवार के मुखिया और पुत्र की मृत्यु के बाद माँ पर सारे परिवार की जिम्मेदारी आ पड़ती है। घर में पुरूष न होने के कारण लोगों की बुरी नज़र उस परिवार पर पड़ती है। लोगों के हवस भरी नज़रों से बचने के लिए माँ, साध्वी बनने का फैसला लेती है।

साथ में अपनी दोनों बेटियों संघमित्रा और छुटकी को भी दीक्षा दिलवाना चाहती है। संघमित्रा इस बात का विरोध करती है, लेकिन संघमित्रा क विरोध के बावजूद माँ छोटी बेटी छुटकी को जैन धर्म की दीक्षा देती है। छुटकी इतने कम उम्र की है कि उसे दीक्षा के नाम पर होने वाले अत्याचारों के बारे में समझ नहीं है। वह दीक्षा के समय होने वाले समारोह को लेकर उत्साहित रहती है। दीक्षा के समय होने वाले ''केश–लुंचन'' का बड़ा चित्रण लेखिका ने किया है। ''एक रात मैंने स्वप्न देखा कि माँ और कई साध्वियों ने मिलकर मुझे रस्सी से बांध दिया है और जबरन मेरे केशों का लुंचन कर मुझे श्वेत वस्त्र पहनाकर मुझे संन्यासिन बना रहे है।

घबराहट में मैं उठ बैठी। बहुत देर तक सोचती रही मैं..... क्या मैं मदर्स फोबिया से ग्रस्त हूँ? कहीं मानसिक रोगी तो नहीं हो जाऊंगी? दुःस्वप्न और यथार्थ की इन्ही छायाओं में ही गिरती–पड़ती मैं नहाने के लिए बाथरूम में घुसी तो दिमाग की सारी नसें एक साथ झनझना उठीं।''

संदर्भ सूची

1. साहित्य में संचेतना– डॉ. किरण श्रीवास्तव– अयन प्रकाशन, महरौली नई दिल्ली, संस्करण 2011
2. साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में वर्ग–संघर्ष, डॉ. ममता भदौरिया– परिक्रमा प्रकाशन, पूर्वी गोकल पुर, लोनी रोड, दिल्ली, संस्करण 2018
3. विमर्श के नये आयाम– डॉ. किरण श्रीवास्तव, अयन प्रकाशन, संस्करण 2014
4. मधु कांकरिया के साथ एक साक्षत्कार मामूली संपादन के साथ डॉ. उषा कीर्ति राजवत 2011

5. जगदीश्वर चतुर्वेदी, स्त्रीवादी साहित्य विमर्श अनामिका प्र, नई दिल्ली 2002 हिन्दी उपन्यास सातवां दशक डॉ. जयश्री बरहाटे संचयन प्रकाशन कानपुर प्रथम संस्करण– 1988
6. मधुकांकरियां का कथा साहित्य– डॉ, चन्द्रशेखर दुबे, राजकमल प्रकाशन, 1998
7. 'मधु काकंकरिया', डॉ, विवेक ओबरॉय, राजकमल प्रकाशन संस्करण 2001